International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(2): 144-146

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(2): 144-146
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 20-01-2021
Accepted: 25-02-2021

डॉ. सुमन रानी
असिस्टेंट प्रोफेसर, भारती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ. सुमन रानी
असिस्टेंट प्रोफेसर, भारती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

ब्राह्मण ग्रन्थों में सामाजिक सन्देश

डॉ. सुमन रानी

प्रस्तावना

वेदों के संहिता संग्रह के पश्चात् वैदिक साहित्य में ब्राह्मण ग्रन्थों का स्थान है। आपस्तम्ब में यज्ञ–परिभाषा (परि. सं.–31) में कहा है 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' अर्थात् वेद मन्त्र भाग तथा ब्राह्मण भाग दोनों को कहते हैं। मन्त्र भाग से अतिरिक्त शेष वेद–भाग ब्राह्मण हैं, जैसा कि जैमिनि का कथन है – शेषेब्राह्मणशब्द [1]। ऋग्वेद भाष्य भूमिका में भी जैमिनी के कथन का समर्थन करते हुए कहा है – "अवशिष्टो वेदभागो ब्राह्मणम्"। [2]

माधवाचार्य जी के कथन से भी यही परिलक्षित होता है –

"मन्त्रश्च ब्राह्मणश्चेति द्वौ भागौ तेन मन्त्रतः।
अन्यद् ब्राह्मणमित्येतद् भवेद् ब्राह्मणलक्षणम्"। [3]

व्युत्पत्ति की दृष्टि से ब्राह्मण शब्द ब्रह्मान् से निष्पन्न है। यह ब्रह्मान् शब्द भी अनेकार्थक है – मन्त्र, यज्ञ[4], रहस्य तथा परमसत्ता। तैत्तिरीय–संहिता 1/5/1 के भाष्य में ब्राह्मण शब्द का निर्वचन इस प्रकार दिया गया है – ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां च व्याख्यानग्रन्थः। यज्ञ के विविध कर्म अपने विस्तार के कारण ब्रह्मा कहलाते थे, अतः ब्राह्मण वे ग्रन्थविशेष जिनमें याज्ञिक दृष्टि से मन्त्रों की विनियोग व्याख्या की गई है –

नैरुक्तं यस्य मन्त्रस्य विनियोगः प्रयोजनम्।
प्रतिष्ठानं विधिश्चैव ब्राह्मणं तदिहोच्यते।।

वाचस्पति मिश्र

उत्तर वैदिक काल में जब वैदिक संहिताएँ धीरे–धीरे जनसामान्य के लिए दुर्बोध होती चली गई, मन्त्रों की विज्ञान राशि एवं अर्थज्ञान केवल कुछ लोगों तक ही सीमित रह गया, तब वेद मन्त्रों की विशद् व्याख्या की आवश्यकता अनुभव की गई और परिणामस्वरूप ये ब्राह्मण ग्रन्थ गद्य में लिखे गये। ब्राह्मण–ग्रन्थों की अपनी सबसे विशिष्टता यज्ञों के स्वरूप और सूक्ष्मातिसूक्ष्म कार्य–कलाप की कार्य–कारण मीमांसा है। इन ब्राह्मण ग्रन्थों की शैली को देखने से यह प्रतीत होता है कि इनकी रचना उन्हीं व्यक्तियों के लिए की गयी है, जो यज्ञों के विधि–विधानों से पहले से ही परिचित है। क्योंकि जो व्यक्ति विधि–विधान से पूर्णतया अपरिचित है, उसके लिये तो ये ग्रन्थ बहुत ही दुरुह है। इस सम्बन्ध में विदेशी विद्वान् मैक्डानल की यह उक्ति यहाँ द्रष्टव्य है – "Their main object is to explain the sacred significance of the ritual to those who are already familiar with the sacrifice."

अर्थात् उन (ब्राह्मण–ग्रन्थों) का मुख्य उद्देश्य यह है कि जो व्यक्ति यज्ञ–विधि से परिचित है, उन्हें यज्ञ सम्बन्धी कर्मकाण्ड की पवित्रता के महत्त्व का ज्ञान करा दिया जाये।

यज्ञ संस्था वैदिक संस्कृति का मूल स्तम्भ है। ब्राह्मण ग्रन्थों में एक दिन से लेकर सहस्रसंवत्सर साध्य तक यागों के विस्तृत वर्णन की चर्चा की गई है, जिनमें व्यक्तियों के कृत्य–अकृत्य कर्मों का विभिन्न कथाओं, आख्यानों तथा यज्ञ–नियमों के माध्यम से समाज के सामंजस्य को स्थापित करने हेतु विविध नीतिनियमों का निर्देश अत्यन्त सामान्य ढंग से प्रस्तुत किए गए हैं, जो मानवमात्र को मन, वाणी और कर्मनिष्ठ होने की ओर प्रेरित करता हुआ एक उत्कृष्ट समाज के निर्माण में सहायक होता है। समाज में मानवीय मूल्यों को स्थापित करने हेतु त्रिविध प्रकार के कारण कहे जा सकते हैं, वह कारण है मन, वाणी और कर्तव्यनिष्ठा।

मन के द्वारा मनुष्य संकल्प शक्ति को प्रबल करता है। वाणी समाज में उसकी प्रतिष्ठा को बनाने में सक्षम होती है। तथा कर्तव्यनिष्ठा मानव के मन एवं वाणी के शुद्ध रूप का क्रियान्वयन करते हुए समाज में कर्मों के अनुरूप स्थान पाता है। मानवीय मूल्य मनुष्य को मनुष्य एवं उत्तम मानव की प्रक्रिया से देवत्व की ओर मार्ग प्रशस्त करते हैं। मानवीय जीवन यज्ञरूप है और मन, वाणी तथा कर्मो से मनुष्य विभिन्न प्रकार के दृष्ट–अदृष्ट भावों से यज्ञरूप जीवन को चलाता और मानव जीवन की सार्थकता उसके द्वारा किये गये कार्यों की पवित्रता पर निर्भर होती है, जो मनुष्य को उत्कृष्ट समाज का निर्माता बनाता है। उत्कृष्ट समाज के निर्माण हेतु सत्य का महत्त्व स्थान–स्थान पर दर्शाया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण के प्रथम अध्याय के षष्ठ खण्ड में कहा गया है कि दीक्षित यज्ञमान को सत्य ही बोलना चाहिए –

"ऋतं वाव दीक्षा सत्यं दीक्षा तस्माद् दीक्षितेन सत्यमेव वदितव्यम्" [5]

इसी प्रकार अन्य कथन है –

"विदुषा सत्यमेव वदितव्यम्" [6]
"अवत्येन सत्यमनृतं हिनस्ति" [7]

ब्राह्मण ग्रन्थों में तो यहाँ तक कहा गया है कि यदि मनुष्य अहंकार से युक्त होकर बोलता है तो उसकी वाणी राक्षसी वाणी है –

"यां वै दृप्तो वदति, यामुन्मतः सा वै राक्षसी वाक्" [8]

मनुष्य की वाणी ही उसकी वास्तविक पहचान होती है, क्योंकि वह प्राणिमात्र की अधिष्ठात्री है। जीवन में प्रगति–पथ पर आगे बढ़ते हुए व्यक्ति की वाणी परम उपादेय सिद्ध होती है –

"अथो वाग्वै सार्पराज्ञी। वाग्धि सर्पतो राज्ञी।।" [9]

'सर्प' शब्द प्राणिमात्र के लिए व्यवहृत है।
ब्राह्मण ग्रन्थों में वाणी को सर्वदा सत्य का पालन करने का निर्देश दिया है। मनुष्य को असत्य नहीं बोलना चाहिए। सत्य ही तेजोमय है –

"अहिताग्निः न अनृतं वदेत्"

ऋत और सतय एक है –

"तदृतं तत्सत्यम्" [10]

तथा

"ऋतं सत्येऽधायि सत्यमृतेऽधायि" [11]

सत्य वह है, जो नेत्रों से देखकर बोला जाये, क्योंकि वाणी झूठ बोल जाती है और मन मिथ्या का ध्यान करने लग जाता है। इसलिए यथार्थ ज्ञान चक्षु ही विश्वसनीय है। व्यक्ति को निरन्तर असत्य से सत्य की ओर बढ़ने का प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि यही प्रक्रिया मनुष्यत्व से देवत्व की ओर प्रेषित करने का द्योतक है–

"अनृतात् सत्यमुपैमि। मानुषाद्दैव्यमुपैमि। दैवी वाचं यच्छामि।" [12]

वाणी की शुद्धि के लिए किसी के पाप पूर्ण कृत्य का कथन नहीं करना चाहिए।

"यो वै पापं कीर्त्तयति तृतीयमेवाशे पाप्मनो हरति" [13]

वाणी की शुद्धि तभी सम्भव हो सकती है, जब मनुष्य मानसिक प्रक्रियाओं में उसका प्रयोग बुद्धि की एकाग्रता के साथ करें अर्थात् सोच विचार कर बोला जाए। ताण्ड्य–ब्राह्मण में कहा गया है –

"वाचं मनसा ध्यायेत्" [14]

तथा

"मनस्तत्पूर्वं वाचो युज्यते मनो हि यद्धि मनसाऽभिगच्छति तद्वाचा वदति" [15]

मन तथा वाणी रथ के दो पहियों के समान है, जो पूर्वतः आगे बढ़ने के लिए एक दूसरे पर परस्पर निर्भर है –

"वाचि तन्मनः प्रतिष्ठापयति। तद्यथैकवर्तनिना रथेन न काचन दिशं तादृगेतत्" [16]

सामविधान–ब्राह्मण की एक आख्यायिका के अनुसार मनुष्य ने जब प्रजापति से स्वर्ग मार्ग को जानने की जिज्ञासा हेतु प्रश्न किया कि कैसे स्वर्ग पहुँचा जा सकता है? तो प्रजापति ने उन्हें वेदों के अनुशीलन स्वाध्याय तथा तप का मार्ग बतलाया है। [17] स्वाध्याय के माध्यम से सावित्री की उपासना सम्भव है, जिसके द्वारा मन के राग द्वेषादि समस्त कलुषों का विनाश हो जाता है –

"दुष्टतादुरुपयुक्तान्न्यूनाधिकांच सर्वस्मात् स्वास्ति" [18]

तपस्या से मनुष्य उच्च स्थिति को प्राप्त करता है। तपस्या से ही मनुष्य ने देवत्व और देवों ने अपने कर्मो के अनुसार स्वर्गिक सुखों को प्राप्त किया। तथा अपने आन्तरिक एवं बाह्य शत्रुओं का विनाश किया।

"तपसा देवा देवतामग्र आयन्। तपसर्षयः स्वरन्वविन्दन्।
तपसा सपत्नान् प्रणुदामरातीः" [19]

तप पर ही सम्पूर्ण विश्व केन्द्रित है। तप के साथ ही लोक की प्रतिष्ठा श्रद्धा से ही है। श्रद्धावान् होकर जब मनुष्य कर्म प्रवृत्त होता हुआ तप का आस्वादन करता है, तब वह श्रद्धा अमृत का दोहन करती है। श्रद्धा कामना की बछेरी है –

"श्रद्धया देवो देवत्वमश्नुते। कामवत्सामृत दुहाना। श्रद्धा देवी प्रथमजा ऋतस्य। विश्वस्य भर्त्री जगतः प्रतिष्ठा। तां श्रद्धां हविषा यजामहे।" [20]

ब्राह्मण ग्रन्थों में स्थान–स्थान पर नैतिक भावना और मानवीय उदात्तता के प्रसंग सन्निहित है। शुनः शेप से सम्बद्ध आख्यान के प्रसंग द्वारा मनुष्य के जीवन का सार बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। कहा गया है कि बिना थके हुए श्री नहीं मिलती, जो विचरता है, उसके पैर पुष्पयुक्त होते हैं, उसकी आत्मा फल को उगाती और काटती है। भ्रमण के श्रम से उसकी समस्त पापराशि नष्ट हो जाती है। बैठे–ठाले व्यक्ति का भाग्य भी बैठ जाता है, सोते हुए का सो जाता है और चलते हुए का चलता रहता है। कलियुग का अर्थ है मनुष्य की सुप्तावस्था, जब वह जंभाई लेता है तब द्वापर की स्थिति में होता है, खड़े होने पर त्रेता और कर्मस्त होने पर सत्ययुग की अवस्था में आ जाता है। श्रम से ही मनुष्य को सफलता प्राप्त होती है और उसके लिए ऊर्जावान होना अत्यावश्यक है। सम्भवतः इसीलिए यहाँ सूर्य को केन्द्र में रखकर

यह उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। क्योंकि सूर्य सृष्टि में ऊर्जा का सबसे बड़ा स्रोत है।

कलिः शयानो भवति सजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरंश्चरैवेति।।
चरन्वै मधु विन्दति चरन्स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरश्चरैवेति।। [21]

सृष्टि के प्रारम्भ का आधार श्रम और तप ही है। भृगु और अथर्वा प्रभृति ऋषियों ने भी श्रम और तप का अनुष्ठान किया। श्रम और तप से द्विविध सृष्टि (देव सृष्टि एवं लोक सृष्टि) सम्भव हुई। गोपथ ब्राह्मण में मन के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि मनुष्य मन में जो भी सोचता है वही हो जाता है अर्थात् किसी भी मनुष्य के जैसे विचार होते हैं वैसा ही उसका व्यक्तित्व बन जाता है और जैसा व्यक्तित्व होता है, उसी के अनुसार कर्म होते हैं अतः यदि मनुष्य वेदों के अध्ययन, स्वाध्याय और तप करता है तो उसका ज्ञान प्रकाशयुक्त होता है। इस प्रकार के ज्ञान का प्रकाश मानवमात्र के कल्याण का द्योतक होता है। सृष्टि में कोई भी कार्य करने के लिए मन को दृढ़ करना अत्यावश्यक है। कहा भी गया है –

"स मनसा ध्यायेद्, यद् वा अहं किं च मनसा ध्यास्यामि तथैव तद् भविष्यति। तद्व स्म तथैव भवति।" [22]

अतः मनुष्य को आधे–अधूरे मन से कार्य करने का निषेध किया है। इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेकानेक सन्देश भरे पड़े हैं। जो मानव को पशुत्व से भिन्न करके मनुष्य और मनुष्य से उत्तम समाज और राष्ट्र को बनाने में सक्षम है। ब्राह्मण ग्रन्थ केवल यज्ञ–याज्ञादीनां के नियमों मात्र का संग्रह नहीं अपितु सृष्टि के सौहार्दपूर्ण, उच्च विचार, ज्ञानराशि, प्रेरक तत्त्व और उत्कृष्ट जीवनशैली का अद्वितीय ज्ञान भण्डार है।

पाद–टिप्पणी

1. जै.मी. सूत्र–2/1/33
2. ऋ.भा.भू., पृ. 37
3. जै.न्या.वि. 2/1
4. ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणं च व्याख्यानग्रन्थः। भट्टभास्कर, तै. संहिता 1/5/1
5. ऐतरेय ब्रा. 1/6
6. ऐतरेय ब्रा. 5/2/9
7. ऐतरेय ब्रा. 4/1/1
8. ऐतरेय ब्रा. 2/1/7
9. कौ.ब्रा. 27/4
10. तैत्तिरीय ब्रा. 11/5/5/4
11. तैत्तिरीय ब्रा. 3/7/7/4
12. तैत्तिरीय ब्रा. 1/2/1
13. ताण्ड्य ब्रा. 5/6/10
14. ताण्ड्य ब्रा. 7/7/8
15. ताण्ड्य ब्रा. 11/1/3
16. ताण्ड्य ब्रा. 1/5/5
17. सामविधान ब्रा. 1/1/17
18. देवता ब्रा. 1/4/3
19. तै.ब्रा. 3/12/3/1
20. तै.ब्रा. 3/12/3/2
21. ऐतरेय ब्रा. 33/1
22. गोपथ ब्रा. 1/1/9